वर्ष 23, अंक 5, Sr. 408, मुंबई, मई 2024, पन्ने 24 कीमत रु. 5/-

।। श्रीमद् प्रेम-रामचन्द्र-भद्रंकर-महोदय-पुण्यपाल-वज्रसेन-हेमभूषणसूरिभ्यो नमः ।।

बीसवीं सदी के महान् योगी पू. पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य एवं उन्ही के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. के चिंतनों को प्रसारित करने वाला मुखपत्र

अर्हद् दिव्य-संदेश

कैलाश नगर में प्रवेश दि. 13-4-2024

प्रवेश दि. 15-4-2024

मंगलाचरण दि. 15-4-2024

उद्घाटन दि. 15-4-2024

भगवान महावीर स्वामी जन्म कल्याणक का वरघोडा दि. 21-4-2024

-: संपादक एवं प्रकाशक :-

सुरेन्द्र जैन, C/o. दिव्य संदेश प्रकाशन Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 Correspondance Whatsapp only, Website : Divyasandesh.online

।। श्री पोसली पार्श्वनाथाय नमः ।।

।। श्रीमद् प्रेम-रामचन्द्र-भद्रंकर-महोदय-पुण्यपाल-वज्रसेन-हेमभूषणसूरिभ्यो नमः ।।

108 पार्श्वनाथ में सुप्रसिद्ध पोसली पार्श्वनाथ तीर्थ पोसालिया की धन्यधरा पर

मरुधर रत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** आदि–5 ठाणा

एवं

विदूषी सा. श्री समर्पणलीनाश्रीजी म. आदि–4 ठाणा के

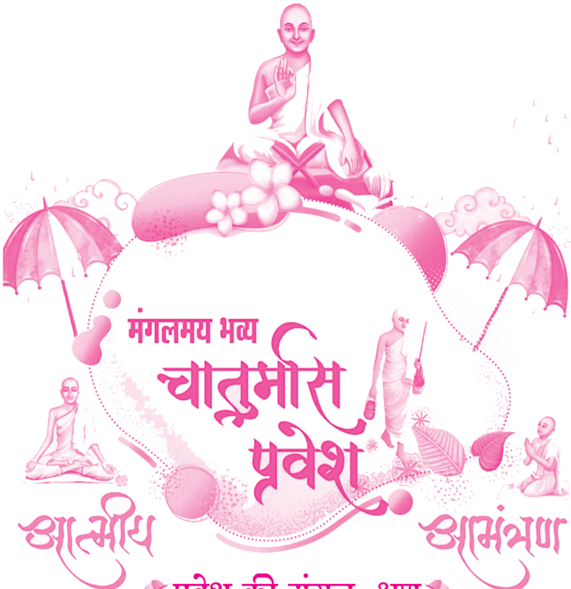

प्रवेश की मंगल–क्षण

आसाढ सुदी–**11**, दि. **17-7-2024** बुधवार

प्रातः **8** बजे सामैया का मंगल–प्रारंभ होगा !

- प्रवेश के शुभ दिन पूज्य आचार्य भगवंत द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित–**244**वीं पुस्तक '**कोयंबत्तूर-प्रवचन सार**' का भव्य विमोचन होगा !
- इस पावन प्रसंग पर तीनों टाइम साधर्मिक भक्ति एवं बाहर से पधारनेवाले महेमानों के लिए आवास–निवास की व्यवस्था होगी।
- चातुर्मास आराधना हेतु पधारने वाले आराधक दि. 19 जुलाई तक पोसालिया पधार जाय।
- दि. 17 अक्टूबर से प्रारंभ होनेवाले महामंगलकारी उपधान तप में जुडने के लिए भावभरा निमंत्रण है।

निमंत्रक

पोसालिया जैन संघ

रत्न संदेश

लेखक : **प्रवचन प्रभावक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

503 **संस्करण**

संतान को जन्म देने और उसके
देह का पालन-पोषण करने का
काम तो पशु भी करते हैं ।
परंतु
संतान के संस्करण का कार्य तो
मानव जीवन में ही शक्य है ।
कुशल शिल्पी संस्करण द्वारा
पत्थर में से भगवान बना सकता है
तो एक माता
संस्करण द्वारा बालक को
सच्चा इंसान क्यों नहीं बना सकेगी ?

504 **संसार**

आदमी सोचता कुछ है और
होता कुछ है,
इसी का नाम संसार है ।
संसार में सब कुछ
अनिश्चित है ।
'न सोचा हो'–वह भी
संसार में बन सकता है
और खूब सोचा हो,
विचार किया हो फिर भी
पुण्य का सहयोग न हो
तो नहीं बनता है ।

जनवरी 2024 से दिसंबर 2024 तक दिव्यसंदेश मासिक के वार्षिक सहयोगी

मुख्य-सहयोगी

- **अ.सौ. सायरबाई बसंतीलालजी हस्तीमलजी चोपडा-बाली-निगडी**
- **एक सद्गृहस्थ कांदिवली-बाली**

सहयोगी

- **शा. महेशकुमार मोहनलालजी राणावत दुजाणा-कुर्ला**
- **स्व. बदामीबाई चम्पालालजी राठोड़ (हस्ते राकेशभाई) बाली, ईरोड़**
- **मुनि स्थूलभद्रविजयजी की प्रेरणा से अ.सौ.मंजुला हसमुखलालजी महेता-मुंडारा-भायंदर**

पूज्यश्री से पत्र सम्पर्क : प.पू. आचार्य श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.
1) C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे,
डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 8484848451 (only whatsapp) संपर्क सूत्र – सहदेवभाई-9867204942

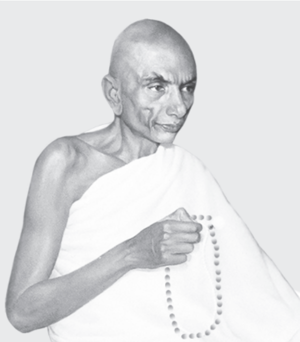

ऐसे थे गुरुदेव हमारे

बीसवीं सदी के महान योगी, नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, निःस्पृह शिरोमणि, **प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**

संपादक : **जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी महाराज**

111

गीतार्थ गुरु का गौरव

–पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

(स्व-पर हितैषी पूज्यपाद पंन्यासजी भगवंत ने साधु-साध्वीजी के आत्म-हितार्थ सैंकडों वाचनाएँ दी थी, उनमें से यह एक वाचना यहां प्रस्तुत है, जो हमारे लिए अत्यंत ही प्रेरणादायी हैं-संपादक)

जैन शासन में गुरुकुलवास और गुरुकृपा की महिमा का खूब खूब वर्णन किया गया है । इसका अर्थ यही नहीं है कि **'गुरु के पास रहना और गुरु की कृपा प्राप्त करना । इसका विस्तृत और रहस्यार्थ यह भी है कि गुरु को छोड गुरु-समुदाय के साथ भी अच्छी तरह से रहना और सभी की प्रसन्नता प्राप्त करना ।'**

संयम की शुद्धि के लिए गुरु महाराज की आवश्यकता तो है ही, साथ में सहवर्तियों की प्रसन्नता और प्रीति भी उतनी ही जरुरी है ।

अपनी शुद्धि और पवित्रता का आधार अपने तुच्छ व स्वार्थी विचार नहीं है, परंतु परोपकार और विशालता से युक्त वृत्ति-प्रवृत्ति है । गुरुकुलवास का रहस्यार्थ समझने जैसा है । **जो समग्र गुरुकुल का प्रेम व सद्भाव जीत सकता हो वो ही सच्चे अर्थ में गुर्वादिक का प्रेम-सद्भाव प्राप्त कर सकता है । जो गुरु को खुश करते समय अन्य अर्थात् गुरु आदि के आश्रितवर्ग को नाखुश-नाराज करते हो तो मानना ही पडेगा कि हम वास्तव में गुरु को भी खुश नहीं कर रहे है ।** हम अन्य की अप्रीति में निमित्त बनते होंगें तो शांति से कैसे रह सकेंगें ? अपना अस्तित्व गुरु को ही नहीं, बल्कि गुरु के आश्रित को भी अप्रीतिकर नहीं बनना चाहिये । इसके लिए तुच्छता को तिलांजलि देकर विशालता-उदारता-गंभीरता आदि गुणों को अपनाना चाहिये । गुरु प्रति रहा अपना बहुमान तभी सच्चा माना जाएगा, जब हम गुरु के आश्रित वर्ग के साथ भी विनय, विवेक और भक्ति से रहते होंगें । ऐसा होने पर ही गुरु को सच्चा संतोष हो सकता है और हम गुरु को समर्पित कहला सकते है ।

गुरु को सम्हाले, परंतु अन्य की उपेक्षा करे तो उसमें गुरु-भक्ति नहीं है । गुरु के हृदय में रहे समस्त गच्छ-समुदाय-संघ की अवगणना उपेक्षा कर जो शिष्य बाह्य विनय-वैयावच्च द्वारा गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहता हो तो वह इस कार्य में कभी सफल नहीं हो सकता । सच्चे गीतार्थ गुरु कभी भी ऐसे शिष्य पर प्रसन्न नहीं होते है ।

सूक्ष्म बुद्धि और आगमिक बोध से परिभावित व्यक्ति की बुद्धि में तो यह बात स्पष्टतया स्थिर होती है कि गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करनी हो तो गुरु के हृदय में जिन जिनका स्थान है, उन सब को प्रसन्न रखना चाहिये । उनके साथ मन-मेल रखे बिना जो

गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहता है, वह गुरु के एक अंग की अवगणना कर दूसरे अंग की पूजा करने के समान हैं, ऐसी चेष्टा बाल चेष्टा ही कहलाती है ।

सच्ची गुरु कृपा प्राप्त किए बिना या प्राप्त करने की भावना बिना, स्वेच्छा से की जानेवाली तप-जप की उग्र साधना भी अंत में विराधक भाव में ही परिणत होती है । **वास्तविक आराधक भाव की स्पर्शना गुरु कृपा के बिना शक्य ही नहीं हैं** और सच्चे गीतार्थ गुरु, उस शिष्य पर ही कृपा करते हैं, जो शिष्य संघ-समुदाय पर भी भक्तिवाला होता है ।

अन्य को नाराज कर गुरु को खुश करनेवाला शिष्य तो वास्तव में गुरु को नाराज करनेवाला ही बनता हैं, परिणाम स्वरुप वह सभी के तिरस्कार का पात्र भी बनता है । संयम जीवन में बाह्य-अभ्यंतर विनय अत्याधिक लाभदायी बनता है । अतः गुरु की आज्ञानुसार जो कुछ करना पडे तो उससे खूब लाभ होता है ।

गुरु की आज्ञानुसार ही जीवन जीया जाय तो आज के साधु जीवन में भी अपूर्व आनंद का अनुभव हो सकता है, क्योंकि गीतार्थ गुरु योग्यता के अनुसार ही आज्ञा करते है और उस आज्ञा का पालन खूब लाभदायी सिद्ध होता है । वर्तमान देश-काल अनुसार हमें जो योग प्राप्त हुआ है वह उत्तमोत्तम है । परंतु योग मिलने मात्र से ही काम नहीं होता है । प्राप्त योग को सफल बनाने के लिए पुरुषार्थशील न बने तो भविष्यकाल में ऐसा योग, अनंतकाल में भी प्राप्त होना मुश्किल हो जाता है ।

जैन शासन में गीतार्थ गुरु के बिना पलभर भी नहीं चल सकता है । ऐसे गुरु की निश्रा को गौतम गुरु की निश्रा माननी चाहिये, यदि उसमें उपेक्षा करेंगें तो अगले जन्म में कदाचित् साक्षात् सीमंधर स्वामी का योग होगा तो भी हम उनके छिद्र ही देखते रहेंगें । अतः अपना भावी भयानक न हो जाय इसके लिए इस भव में प्राप्त सुगुरु की उपासना में लेश भी कमी नहीं रखनी चाहिये ।

गणधर गौतम स्वामी को भी गुरु के बिना चलता नहीं था, तो हम को तो कैसे चल सकता है ?

आचार्य आदि सभी को गुरु निश्रा बिना नहीं चलता है, शुद्धि के लिए गुरु निश्रा अवश्य चाहिये । वैद्य भी, अपनी तबियत बिगडने पर दूसरे वैद्य को ही अपनी नाडी बताता है ।

अपने आपके सच्चे परीक्षक बनने की क्षमता हमारे पास नहीं है । बुद्धि की इस निर्मलता को प्राप्त करना, बहुत कठिन है, फिर भी **अपने आपको गुरु आदि से अधिक बुद्धिशाली मानता हो तो इसमें गुरु की स्पष्ट आशातना ही है ।**

इससे अपना अभिमान ही पुष्ट होता है । पुष्ट हुआ यह अभिमान, भवोभव तक गुण प्राप्ति में बाधक बने बिना नहीं रहता है ।

आज अपने में ज्ञान बढता हुआ दिखाई देता है । तो उसी प्रकार संकल्प-विकल्प भी बढते हुए दिखाई देते है । उन्हें शांत करने का एक मात्र उपाय गुर्वाज्ञा-समर्पितता ही है । गुरु को समर्पित बने तो एक बार तो विकल्प शांत हो जाते हैं । गुरु का यहीं सबसे बडा उपकार है ।

जैनी दीक्षा अर्थात् समर्पण ।

योग की सर्वोत्कृष्ट साधना रुप संयम का स्वीकार किया अर्थात् तन-मन-वचन और जीवन आदि सब कुछ चतुर्विध संघ की उपस्थिति में गुरु के चरणों में समर्पित किया ।

तमाम भव रोगों का एक मात्र राम बाण इलाज गुरु का आलंबन होने पर भी निरर्थक ही संकल्प-विकल्प कर हम अपने ही रोग को खुराक देने का काम करते है ।

गुरु की शोध करने के पूर्व खूब विचार करना

चाहिये, परंतु गीतार्थ समझकर जिन्हें सुगुरु के रुप में शिरोधार्य किया, फिर अपने तुच्छ स्वार्थ के खातिर उन गुरु को छोड दे, उनके दोष देखते जाए तो भविष्य में गौतम गणधर जैसे गुरु मिले तो भी अपना उद्धार नहीं हो सकता है ।

भूतकाल में गीतार्थ गुरु की गंभीर आशातना की होगी उस का यह विपाक है कि गीतार्थ गुरु की प्राप्ति होने पर भी हम अपनी चिंता से मुक्त नहीं हो पाते है और गुरु के दोष देखने की बूरी लत छूटती नहीं है । इस भूल की परंपरा को आगे बढाने से रोकना हो तो उसका एक मात्र रामबाण उपाय यही है कि **''गीतार्थ गुरु को मन-वचन-काया से समर्पित हो जाना ।'' ऐसा करने से गुरु प्रति रहा सद्भाव अनुबंधवाला बन सकेगा । साधना में आगे बढने के लिए यह अनुबंध खूब जुरुरी है ।**

सम्मानपूर्वक गुरु भगवंत को नहीं सुनने से अनादेय और दौर्भाग्य नाम के दो कर्मों का तीव्र बंध होता है, फिर भवोभव तक उस शिष्य का वचन किसी को रुचिकर नहीं बनता है ।

लाखों मनुष्यों को अप्रसन्न करने से जिन दुष्कर्म का बंध नहीं होता हैं, उस दुष्कर्म का बंध, सुगुरु को एक क्षण के लिए अप्रसन्न करने से हो जाता है । उसी प्रकार लाखों मनुष्यों को प्रसन्न करने से जो लाभ प्राप्त नहीं होता है, वह लाभ एक क्षण के लिए गुरु को प्रसन्न करने से प्राप्त हो जाता है ।

गुरु पास में हो लेकिन अपने मन में से उनके प्रति पूज्य भाव चला गया हो तो वे गुरु दूर-दूर चले जाते है । **दिल में से गुरु का स्थान चला जाय तो फिर इस भव में लोगों की लाते खाने के सिवाय कुछ भी बाकी नहीं रहता है ।**

अपना अभिमान तोडने के लिए गुरु की निश्रा यह अमोघ औषध है । वह का वह काम हो, परंतु अपनी इच्छा से करे तो अभिमान का पोषण होता है और गुर्वाज्ञापूर्वक करे तो नम्रता पुष्ट बनती है । आज्ञा पालन की भावना जागृत होने के बाद आज्ञा ही पसंद पडेगी और जैसे जैसे आज्ञा पसंद पडेगी, वैसे-वैसे गुरु भी निःसंकोच आज्ञा करेंगे । गुरु जितने आनंद और संकोच के बिना ज्यादा आज्ञा करेंगे, उतना ही अपना कल्याण जल्दी होगा ।

गुरु को आज्ञा करते हुए डर या संकोच का अनुभव होता हो तो वह शिष्य के दुर्भाग्य की निशानी मानी जाएगी, गुरु से हम डरे, यह अपना सद्गुण है, परंतु अपने से गुरु डरे, यह अपना भयंकर दोष है ।

शिष्य के हृदय में गुरु का स्थान हो, यह तो सौभाग्य की बात है, परंतु गुरु के हृदय में शिष्य का स्थान हो, यह आज्ञा पालन गुण की पराकाष्ठा का चिन्ह माना जाता है । इससे गुरुत्व और शिष्यत्व दोनों विकसित होते है ।

हम जिस दिन दीक्षित हुए, उस दिन संघ के सामने हमने, अपना सब कुछ गुरु चरणों में समर्पित कर दिया था, अब उस सौंपी हुई वस्तु पर पुनः अधिकार का दावा करे, यह उचित नहीं है ।

हम गुरु को समर्पित रहे, इसी में हमारा विकास है । अपनी आत्मा में छीपी हुई महान् शक्तियों और महान् खजाने की चाबी गुरु के पास है । गुरु प्रसन्नता की चाबी से यह खजाना खुल सकता है ।

मुक को वाचाल बनाए और पंगु भी पर्वत का उल्लंघन कर सके । **'मूकं करोति वाचालः'** इस सुभाषित द्वारा गुरु का जो गौरव-दर्शन कराया गया हैं, वह बिल्कुल सत्य है ।

गुरु की प्रसन्नता शिष्य को क्या क्या देती हैं ? यह प्रश्न करने के बजाय, क्या क्या नहीं देती हैं ? यह प्रश्न करना उचित माना जाएगा ।

इस प्रकार जो गुरु प्रसन्नता पा लेता हैं, उसका बेडा पार हुए बिना नहीं रहता है । थोडी साधना द्वारा भी संसार सागर का पार पा सकते है । **(क्रमशः)**

कर्म को नहीं शर्म
(भीमसेन-चरित्र)

(गतांक से आगे)

लेखक : प.पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

12. तप-प्रारंभ !!

``राजा ने उन आभूषणों की जाँच की ! उन आभूषणों पर राजगृही की मोहर दिखाई दी । राजा ने अनुमान किया कि ये आभूषण राजगृही के महाराजा की महारानी के होने चाहिए ।''

``राजा ने ये आभूषण मुझे सौंपे ! मैंने वे आभूषण ध्यान से देखे—तब पता चला कि ये तो तुम्हारे ही हैं । मैंने वे आभूषण सुरक्षित रख लिये ।...और आज वे तुम्हें वापस सौंप रही हूँ ।''

सुशीला ने वे सारे आभूषण देखे । वे सभी आभूषण उसी के थे । खोए हुए सारे आभूषणों को प्राप्त कर सुशीला एकदम खुश हो गई ।

सुशीला के खोए हुए आभूषणों की पुनः प्राप्ति से भीमसेन का मन आनंद से भर आया । वह सोचने लगा,—यह धर्म का साक्षात् प्रभाव है । मैंने अपने जीवन में सद्भावपूर्वक मुनि को जो दान दिया, उसी के प्रभाव से मेरे पुण्य में अभिवृद्धि हुई है । उस दान के प्रभाव से मुझे धन की प्राप्ति हुई, स्नेही-स्वजनों के साथ मिलन हुआ...खोए हुए रत्न प्राप्त हुए...खोया हुआ स्वर्णरस वापस मिला...और खोए हुए आभूषण भी वापस मिल गए । ओहो ! जिनेश्वर भगवंत के बताए हुए धर्म का यह कैसा अद्भुत प्रभाव है ! अब तो मुझे जिनेश्वर भगवंतों के द्वारा बताए हुए दान आदि धर्मों की आराधना करनी ही चाहिए । इस प्रकार विचार कर भीमसेन ने गुरु भगवंत के द्वारा बताए हुए वर्धमान तप का मंगल प्रारंभ करने का दृढ़ संकल्प किया ।

विजयसेन व सुलोचना ने कहा, **``भीमसेन ! अभी आप इस तप के लिए आग्रह न रखें । अभी आपकी काया भी अत्यंत कृश बनी हुई है । अभी तक आपने बहुत कष्ट सहन किये है, अतः आप अपने शरीर की ओर विशेष ध्यान दें । शरीर स्वस्थ होगा तो बाद में तप धर्म की आराधना करनी ही है ।''**

विजयसेन के इस अभिप्राय को जानकर भीमसेन ने कहा, **``बंधुवर्य ! भावावेश में आकर आप शरीर की स्वस्थता व सुरक्षा के लिए निवेदन कर रहे हो...परन्तु आखिर तो यह शरीर क्षणभंगुर ही है न ! आज नहीं तो कल, यह नष्ट होने वाला है । इसे चाहे जितना पुष्ट किया जाय, परन्तु आखिर तो राख की ढेरी ही बनने वाला है । मानव देह की सफलता व सार्थकता अहिंसा-संयम व तप धर्म की आराधना-साधना में रही हुई है । मृत्यु का क्या भरोसा है ? वह**

कभी आकर अपने जीवन का अंत ला सकती है...तो फिर सत्कार्य में प्रमाद किस बात का ! प्रमाद तो मृत्यु है । प्रमाद के वशीभूत होकर तो हमने कितने अमूल्य जीवन नष्ट किए हैं । अब तो हमें सावधान बनना ही होगा अन्यथा यह दुर्लभ जीवन भी इसी प्रकार नष्ट हो जाएगा । अतः तप में अंतराय करना उचित नहीं है ।''

इस प्रकार भीमसेन के समझाने पर विजयसेन राजा व सुलोचना रानी अत्यंत खुश हो गये...और एक शुभ मंगल मुहूर्त में भीमसेन ने वर्धमान तप का मंगल प्रारंभ कर दिया । यह तप ज्योंही एक दिन पूर्ण हुआ । भीमसेन ने परम शांति व स्वस्थता का अनुभव किया । उसका तप ज्यों-ज्यों आगे बढ़ने लगा त्यों-त्यों उसकी मानसिक-प्रसन्नता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई । देवसेन व केतुसेन का स्वास्थ्य भी दिन-प्रतिदिन सुधरने लगा...और कुछ ही समय बाद उनका शरीर पूर्ववत् हो गया । उनकी काया हृष्ट पुष्ट हो गई और वे अत्यंत ही तेजस्वी व बलिष्ठ दिखाई देने लगे ।

13. प्रयाण !!

एक दिन विजयसेन राजा का राजदरबार खचा-खच भरा हुआ था । अपराधी को योग्य दंड देने के लिए वह दिन पहले से ही निश्चित था । राजसभा में महाराजा विजयसेन, महारानी सुलोचना, भीमसेन व सुशीला आदि भी योग्य आसनों पर आसीन हो चुके थे ।

अपराधी के रुप में रहे हुए लक्ष्मीपति सेठ, भद्रा सेठानी व आभूषणों की चोरी करने वाले चोर को भी कैदी के रुप में राजसभा में एक ओर रखा गया था ।

राजसभा का प्रारंभ होने के साथ ही विजयसेन ने कहा, **``लक्ष्मीपति सेठ व भद्रा सेठानी ने अपकृत्य करने में कोई कमी नहीं रखी थी । उन्होंने एक परदेशी व्यक्ति के साथ जो दुर्व्यवहार किया, भद्रा सेठानी ने एक निर्दोष स्त्री व उसके बालकों पर जो अत्याचार किए, वह एक बहुत बड़ा अपराध है । नगर की प्रतिष्ठा को इस प्रकार कलंकित कर उन्होंने भयंकर अपराध किया है ।''**

राजा का आरोप सुनकर हाथ जोड़कर अत्यंत ही नम्र होकर लक्ष्मीपति सेठ बोला, **``राजन् ! आप तो दया के महासागर हो । धन के नशे में आकर हमने जो नीच कृत्य किया है, उसके लिए हमें अत्यंत ही दुःख है । आप हमें क्षमा करें ।''**

``क्षमा ! किस बात की क्षमा ? तुमने तो मानवता को भी कलंकित किया है । इस प्रकार के अपराधी को कुछ भी दंड नहीं दिया जाएगा तो नगर में अपराधियों का जोर बढ़ जाएगा । इस दुष्कृत्य के लिए मैं तुम्हें मृत्युदंड की सजा घोषित करता हूँ ।''

राजा की ओर से मृत्यु-दंड की सजा सुनते ही लक्ष्मीपति सेठ व भद्रा सेठानी एकदम काँपने लगे । मृत्यु दंड की सजा सुनकर भीमसेन का हृदय करुणार्द्र हो उठा । उसने विजयसेन को निवेदन करते हुए कहा, **``राजन् ! इस संदर्भ में मैं अपना अभिप्राय व्यक्त करना चाहता हूँ, आप मुझे अनुमति प्रदान करें ।''**

(क्रमशः)

वैराग्य दीप-
हृदय प्रदीप

लेखांक-13

विवेचनकार : **मरुधर रत्न पू.आचार्य देव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**
नवोदित लेखक **मुनिश्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.**

मुर्खता से बचने का उपदेश

यस्मिन् कृते कर्मणि सौख्यलेशो, दुःखाऽनुबन्धस्य तथाऽस्ति नान्तः ।
मनोऽभितापो मरणं हि यावद्, मुर्खोऽपि कुर्यात् खलु तन्न कर्म ।।13।।

शब्दार्थ

यस्मिन् कृते कर्मणि=जिस कार्य को करने में, **सौख्यलेशो**=सुख का अंश मात्र है, **दुःखाऽनुबन्धस्य**=दुःख की परंपरा बढानेवाले का, **तथा**=और, **अस्ति**=है, **न**=नहीं, **अन्तः**=सर्वनाश, **मनोऽभितापो**=मानसिक क्लेश, **मरणं हि यावद्**=यावत् मरण भी हो सकता है, **मुर्खः**=विवेकहीन पागल व्यक्ति, **अपि**=भी, **कुर्यात्**=करता है, **खलु**=वास्तव में, **तत्**=वह, **न**=नहीं, **कर्म**=कार्य ।

गाथार्थ

जिस कार्य को करने में सुख का अंश मात्र ही हो परंतु वह अनंत दुःख की परंपरा को बढाने वाला हो, मानसिक क्लेश को पैदा करता हो और यावत् मरण का कारण हो, ऐसा कार्य वास्तव में कोई विवेकहीन पागल व्यक्ति भी नहीं करता है ।

विवेचन

पीछलें दो श्लोकों में ग्रंथकारश्री ने हमें परदोषदर्शन का त्याग करने एवं आत्मा में लीन बनने का उपदेश दिया । इस श्लोक में वे हमें परिणाम में अतिदुःखदायी क्षणिक सुख से विरक्ति पाने की प्रेरणा दे रहे है ।

जैसे आत्मा को ऊपर उठाने वाले अरिहंत आदि नवपद है, वैसे ही आत्मा को नीचे गिरानेवाले पांच इन्द्रिय के विषय और चार कषाय की जोडी रुप नवपद ही है । अनादिकाल से आत्मा की दुर्दशा का मुख्य कारण यही जोडी है । इसी जोडी ने आत्मा को अंध बनाकर रखा है । परमज्ञानी होने पर भी अपनी आत्मा अज्ञान के अंधेरे में दर-दर भटक रही है । जैसे किसी गर्भ श्रीमंत व्यक्ति का पुत्र अपने वास्तविक स्वरुप को नहीं जानने के कारण घर-घर भीख मांगता है, वैसे ही हमारी आत्मा भी अपने वास्तविक स्वरुप को नहीं जानती हुई चारों गतियों में अपार दुःखों का अनुभव कर रही है । महामुर्ख की तरह क्षणिक, विनश्वर, परवश ऐसे पौद्गलिक पदार्थों में सुख मानकर मात्र दुःखों

का अनुभव कर रही है । जैसे मुर्ख व्यक्ति कोई भी कार्य बिना विचारे करता है, वैसे हम भी विचार किए बिना मुर्ख बंदर ती तरह अकार्य करते हुए मरण को गले लगाने की मुर्खता कर रहे है ।

मुर्ख बंदर

एक सेठ ने अपने नगर के समीप में मंदिर बनवाने का कार्य प्रारंभ किया । मंदिर बनाने वाले सुथार आदि सूर्योदय से ही मंदिर बनाने के कार्य में लग जाते थे । दोपहर के समय नगर में जाकर वे सभी भोजन करते थे । एक दिन किसी सुथार ने अर्जुन वृक्ष की लकड़ी को चीरने का काम उठाया था । दोपहर तक लकडी चीरने का काम पूरा नहीं हुआ । भोजन का समय होने से आधी फटी उस लकडी में एक मजबूत कीली गाडकर नगर में चला गया ।

अचानक उसी दिन बंदरों का एक समुह वहाँ आया । चंचल स्वभाववाले सभी बंदर वृक्षों पर आकर स्वेच्छा से क्रीडा करने लगे । उनमें से एक बंदर आकर अर्जुन वृक्ष की उसी लकडी को छेडने लगा, जो आधी फटी हुई थी । कुतुहल से उसने लकडी के बीच में रही कीली को देखा । अपने चंचल स्वभाव से मजबूर वह उस कीली को खींचने का प्रयत्न करने लगा । कीली लकडी में इतनी मजबूती से लगी हुई थी कि उसे निकालना आसान नहीं था । कठिन कार्य करने में उत्साहित उस बंदर ने लकडी पर चढकर जोर लगाकर उस कीली को खींचा ।

एक-दो बार प्रयत्न करने पर कीली की पकड कुछ ढीली हो गई । अंत में अधिक उत्साहित होकर उसने कीली को जोर से खींचा और उसके दुर्भाग्य वश कीली निकल गई । लकडी के दोनों भाग जुड गए । झटका इतना जोर से हुआ कि वह अपने आप को संभाल न सका और उसका गुप्तांग उसके बीच में आकर पीस गया । उसी क्षण वह करुण मौत से मर गया ।

पास खडे सभी बंदर झटके की आवाज सुनकर चमक गए । तडफते हुए मुर्ख बंदर की मौत देखकर सभी बंदर सावधान हो गए । दूम दबाते हुए सभी अपने स्थल पर चले गए ।

बंदर का समुह भी इतना समझदार था कि एक की मौत देखकर सावधान बन गया । उन्हें किसी उपदेश की आवश्यकता नहीं पडी । वे स्वत: ही अपना हित-अहित समझ गए । परंतु इतने इतने दृष्टांत और मार्मिक उपदेश देने पर भी, अभी तक अपनी आत्मा नहीं समझी है कि मेरा हित और अहित किस में रहा है, इसलिए ग्रंथकार हमें पुन: इस गाथा के द्वारा प्रेरणा दे रहे है कि–**''ऐसा कार्य तो कोई मुर्ख भी नहीं करता, जिसमें कण जितना सुख हो बल्कि मण और टन जितना अपार दु:ख हो ।''**

ऐसा कहकर वास्तव में वे यही कह रहे है कि सारी दुनिया को मुर्ख बनाने वाला तू स्वयं ही मुर्खता कर रहा है । संसार का सुख, वास्तव में सुख नहीं बल्कि दु:ख की परंपरा को ही बढाने वाला है ।

एक बालक समुद्र के किनारे पर घुमते हुए Ice-cream खा रहा था । अचानक उसके हाथों से वह Ice-cream नीचे गिर गई । उसके पास इतने पैसे नहीं थे कि वह दूसरी Ice-cream खरीद सके, इसलिए उसी Ice-cream को उठाकर मुख में डालने लगा । उसने रेती से भरी उस Ice-cream को मुख में डाला, Ice-cream के स्वाद से भी अधिक निरस रेती उसे चबानी पडी । संसार का सुख भी रेती से लिपटी हुई Ice-cream जैसा है ।

सुख को पाने के लिए दु:खों का क्लेश सहना पडता है, फिर भी पांच इन्द्रिय के सुख और चार कषायों की मीठी खुजली हमसे छूटती नहीं है ।

जिस तरह खुजली का दर्दी जैसे जैसे शरीर को खुजलता है, वैसे वैसे पहले तो उसे कुछ राहत का अनुभव होता है, परंतु उसकी खुजली शांत नहीं होती, बल्कि बढती जाती है । पहले नाखुन, फिर कंघी और अंत में छूरी से

खुजलाकर अपनी त्वचा को नष्ट कर देता है । उसी तरह ही विषयों की यह खुजली भी प्रारंभ में सुखदायी होकर अंत में दु:खदायी ही होती है ।

इन्द्रिय और कषाय की इस जोडी को जीतना कितना जरुरी है–यह बात कलिकाल सर्वज्ञ पूज्य आचार्य हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. योगशास्त्र के चौथे प्रकाश में फरमाते है–

अयमात्मैव संसार: कषायेन्द्रियनिर्जित: । तमेव तद्विजेतारं, मोक्षमाहुर्मनीषिण: ।।

अर्थात्–कषाय और इन्द्रियों से जीती गई यह आत्मा ही संसार है और इसी को जीतने वाली आत्मा ही मोक्ष है ।

अत: इनके स्वरुप को समझकर इन्हें जीतने का प्रयास करना आवश्यक है ।

पांच इन्द्रियों की गुलामी

(1) स्पर्शनेन्द्रिय – कोमल - मुलायम पदार्थ को स्पर्शकर सुख पाने की इच्छा स्पर्शनेन्द्रिय की गुलामी है । इसकी गुलामी से महाशक्तिशाली हाथी भी मनुष्य के वश हो जाता है । हाथी अत्यंत ही कामी पशु है । इसी कमजोरी का फायदा उठाते हुए हाथी को वश करने वाले मनुष्य जंगल में बहुत बडा खड्डा खोदते है । उस पर घास आदि बिछाकर उसे ढंक देते है । फिर सामने की ओर हथिनी को खडी करते है । हथिनी के स्पर्श में मोहित बना महाकाय हाथी उस ओर दौडता है और कामांध बनकर बीच में रहे खड्डे में गिर जाता है । यही से उसकी स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है । पहले उसे खड्डे में महिने-दो महिने तक भूखा–प्यासा रखते है, जिससे वह पूरी तरह से कमजोर हो जाता है । फिर उस पर जुल्म की बरसात होती है । चाबूक और हंटरों की मार के बाद उसे बाहर निकालते है और लोहे की जंजीरों से बांधकर रखते है । जैसे ही वह उन जंजीरों को तोडने का प्रयास करता है, शारीरिक कमजोरी के कारण वह असफल होता है । उसके शरीर से खून निकलने लगता है । अंत में वह मन से हार जाता है और जिदंगी भर की गुलामी को स्वीकार कर लेता है । समय जाने के बाद जब वह पुन: हष्ट-पुष्ट बनता है, तब एक सामान्य लोहे के जंजीर को तोडने के लिए भी अपने आप को असमर्थ मानता है । इस तरह स्पर्शनेन्द्रिय की गुलामी महाकाय हाथी को भी जंजीरों से बांध देती है ।

(2) रसनेन्द्रिय – स्वादिष्ट और मनपसंद भोजन को चखकर सुखी होने की इच्छा रसनेन्द्रिय की गुलामी है । मच्छीमार मछलियों को पकडने के लिए कांटों में मांस का टुकडा लगाकर पानी में फेंकते है । उसे खाने की इच्छा से बडी-बडी मछलियाँ जैसे ही उसे अपने मुंह में डालती है, वह काँटा उनके तालू में लग जाता है । वे बे मौत मर जाती है ।

(3) घ्राणेन्द्रिय – सुगंध को सुंघकर सुखी होने की इच्छा घ्राणेन्द्रिय की गुलामी है । सूर्यमुखी कमल की सुगंध में मोहित बना भ्रमर सूर्यास्त होने पर भी उसे छोडता नहीं है । कमल बंद हो जाता है । भ्रमर उसकी सुगंध में इतना आसक्त होता है कि अपने पास कठोर लकडे को भेदने की शक्ति होने पर भी कमल के कोमल पत्तों को भेद नहीं सकता है । भीतर ही अपना दम तोड देता है ।

(4) चक्षुरिन्द्रिय – मनोहर दृश्य को देखकर सुखी होने की इच्छा चक्षुरिन्द्रिय की गुलामी है । दीपक की लौ में आकर्षित पतंगा उसे पाने की इच्छा से उसके पास जाता है । यथास्वभाव वह आग उसे जलाकर भस्म कर देती है । क्षणिक आकर्षण और प्राप्त हुई आँखों की शक्ति ही उसके मौत का कारण बनती है ।

(5) श्रोत्रेन्द्रिय – मधुर संगीत को सुनकर सुखी होने की इच्छा श्रोत्रेन्द्रिय की गुलामी है । जंगलों में रहकर घास खानेवाले और झरणों के मीठे पानी पीने वाले हिरण, मात्र मधुर संगीत सुनने की चाह में शिकारिओं के द्वारा मारे जाते है ।

इस प्रकार एक-एक इन्द्रिय की गुलामी के कारण इन प्राणियों की मौते देखी जाती है । ये सभी प्राणी तो मात्र एक इन्द्रिय के गुलाम है, फिर भी मारे जाते है, तो हम मनुष्य की तो क्या बात की जाय । प्राय: सभी मनुष्य इन पांचों इन्द्रिय के गुलाम है । हमारा क्या होगा ? यही चिंता जगाने के लिए महोपाध्याय श्री यशोविजयजी **ज्ञानसार** के **इन्द्रियजय** अष्टक में कहते है–

पतङ्गभृङ्गमीनेभ–सारङ्गा यान्ति दुर्दशाम् । एकैकेन्द्रिय–दोषाच्चेद् दुष्टैस्तै: किं न पञ्चभि: ।।

अर्थात् – एक-एक इन्द्रिय के दोष से पतंगा, भ्रमर, मछली, हाथी और हिरण दुर्दशा को प्राप्त करते है, तो दुष्ट ऐसी उन पांचों के द्वारा होने वाली दुर्दशा की क्या बात की जाय ?

चार कषाय

उपमिति भव प्रपंचा कथा में श्री सिद्धर्षि गणी ने चार कषायों को महामोहराजा के परिवार के रुप में बताया है । महामोहराजा के दो पुत्र है–रागकेसरी और द्वेषगजेन्द्र । चार कषायों में क्रोध और मान-ये दोनों द्वेषगजेन्द्र के पुत्र है तथा माया और लोभ ये दोनों रागकेसरी के पुत्र है । संक्षेप में इन कषायों के समझाना हो तो कह सकते है ।

सुनाकर बताने की इच्छा क्रोध और मान है, तथा
छिपाकर अपना बनाने की इच्छा माया और लोभ है ।

कषायों के दृष्टपरिणाम बताती अच्चंकारी भट्टा की कथा–

''हे देवानुप्रिये ! आज हमारे घर साक्षात् कल्पतरु के समान मुनि भगवंत पधारे है । उन्हें श्रीमुनिपति महात्मा की चिकित्सा के लिए लक्षपाक तैल की आवश्यकता है, इसलिए भोयरे में पडा लक्षपाक तैल का घडा लेकर आ जा ।''

''जी स्वामिनी ! अभी लेकर आती हूँ ।''

दासी भोयरे में जाकर तैल का घडा ले आयी । परंतु जैसे ही वह सेठानी के पास पहुँची, पूरी सावधानी रखने पर भी अचानक वह तैल का घडा धडाम्...करता हुआ नीचे गिर गया । सवा लाख की कीमत वाला तैल नष्ट हो गया । सेठानी ने दूसरा धमाका किये बिना शांति और प्रेम से दासी को दूसरी आज्ञा दी, **'हे देवानुप्रिये ! कोई बात नहीं ! भोयरे में पडा दूसरा घडा ले आ ।''** दासी सावधान होकर दूसरा घडा लेकर आयी । परंतु पुन: उसी तरह से वह लक्षपाक तैल का दूसरा घडा धडाम् !!! करता हुआ फूट गया । इसी तरह लक्षपाक तैल का तीसरा घडा भी फूट गया । सेठानी ने थोडा भी क्रोध किये बिना, दासी को कहा **''हे देवानुप्रिये ! सम्हलकर चलना । कही फिसल न जाय कोई चोट न लग जाय ।''**

ऐसा कहकर क्षितिप्रतिष्ठित नगर के मंत्री की पत्नी अच्चंकारी भट्टा स्वयं भोयरे में जाकर लक्षपाक तैल का चौथा घडा ले आयी और मुनि भगवंतों के पास आकर यथेच्छ तैल का लाभ देने की विनती की । मुनि मुनिपतिजी महात्मा की चिकित्सा के लिए आवश्यक मात्रा में तैल वहोर कर बोले-हे भद्रे ! हमारे कारण तुम्हारे तीन-तीन लक्षपाक तैल के घडें फूटकर नष्ट हो गए । फिर भी तुमने दासी पर थोडा भी गुस्सा नहीं किया । इस बात का हमें अत्यंत आश्चर्य हो रहा है ।

मुनि भगवंत की बात सुनकर कुछ हँसकर अच्चंकारी भट्टा ने मुनि भगवंत को प्रत्युत्तर दिया–हे पूज्य ! कषायों का क्या कटु परिणाम होता है वह मैंने इसी जन्म में अनुभव किया है । इसलिए मैंने निर्णय किया है कि किसी भी परिस्थिति में मुझे कषाय नहीं करना है ।

मुनि भगवंत ने जिज्ञासा बताते हुए प्रश्न किया–''**कौन-सा कटु परिणाम ?**'' तब अच्चंकारी भट्टा ने अपनी जीवन कथा प्रारंभ की–

मैं क्षितिप्रतिष्ठित नगर में धन्ना सेठ और भद्रा सेठानी की पुत्री हूँ । आठ भाइओं की एक बहन, मेरा नाम रखा **'भट्टा' ।** पिताजी को मुझ पर अत्यंत प्रेम होने से सभी स्वजनों को इकट्ठा करके कहा-**'यह मेरी पुत्री मुझे अतिप्रिय होने से इसे कोई भी डांटे नहीं'** । पिताजी की इस उद्घोषणा को ध्यान में रखते हुए मेरे सभी स्वजन मुझे अच्चंकारी–अच्चंकारी के नाम से बुलाने लगे । इस तरह मेरा नाम अच्चंकारी भट्टा पड गया ।

जब मैं युवावस्था में आई, तब मेरे रुप पर मोहित हुए मंत्रीश्वर ने पिता से मेरी मांग की । पिताजी ने मुझपर रहे अतिस्नेह के कारण एक शर्त रखी कि ''**जो पुरुष मेरी पुत्री के वचन का उल्लंघन नहीं करेगा और उसकी सभी बातें मानेगा, उसे ही मैं अपनी पुत्री दुंगा ।**'' मंत्रीश्वर ने मेरे पिताजी की शर्त कबूल की और एक शुभ दिन मंत्रीश्वर के साथ मेरा विवाह कराया ।

हमारा वैवाहिक जीवन सुंदर रुप से चल रहा था । परंतु राज्यकार्य के कारण कभी कभी मेरे पति थोडी देर से आते थे । इस बात से नाराज होकर एक दिन मैंनें मंत्रीश्वर से कहा-''**हे प्राणनाथ ! आप राज्य के मंत्रीश्वर हो, तो साथ ही मेरे पतीश्वर भी हो । अतः यदि मुझसे प्रीति रखनी हो तो प्रतिदिन सूर्यास्त के पहले घर आ जाए । वर्ना...**'' अपने रुबाव को बताते हुए मैंने मंत्रीश्वर को ठीक ठीक सुना दिया । पिताजी की शर्त से बँधे मंत्रीश्वर के पास इस बात के स्वीकार के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं था । अब प्रतिदिन सूर्यास्त के पहले वे घर आ जाते थे । इससे मेरा रुतबा और बढने लगा ।

एक दिन राजा ने मंत्रीश्वर से पुछ लिया ''**हे मंत्रीश्वर ! आप प्रतिदिन इतने जल्दी घर क्यों चले जाते हो ?**'' तब मेरे प्रेम के पाश में बंधे मंत्रीश्वर ने सारी सत्य हकीकत बता दी । राजाजी उनकी बात पर हँसने लगे । उन्हें जोरु का गुलाम कहने लगे । उनका सिर शर्म से झुक गया । मरे हुए को और मारते हुए राजाजी ने मंत्रीश्वर को दो प्रहर रुकने की कठोर आज्ञा दी । **'इतो व्याघ्र इतस्तटी'** एक ओर बाघ तो दूसरी और नदी-दोनों ओर से आयी मुसीबत में मंत्रीश्वर को राजाजी आज्ञा स्वीकार करनी पडी ।

इस ओर मैं घर में बैठी मंत्रीश्वर का इंतजार करने लगी । रोज के उनके आने का समय बीत गया । धीरे धीरे सूर्यास्त हो गया । कुछ देर तक तो मुझे चिंता हुई । फिर सूर्यास्त को एक प्रहर बीत गया । मंत्रीश्वर अब तक नहीं आये । मेरी चिंता क्रोध में बदलने लगी । मन में अनेक कुविकल्प शुरु हो गए । ''**आज तो उन्हें सबक सीखाकर ही रहूँगी**'' ऐसा निर्णय कर मैंने घर का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया । मैंने फैसला कर लिया-''**या तो आज इस घर में मैं रहूंगी या वे रहेंगे । क्या समझते है वे अपने आपको ? मंत्रीश्वर होंगे तो राजा के, मेरे तो गुलाम है । पिताजी को वचन देकर मुझे यहाँ लाये थे, आज इन्होंनें वचन भंग किया है । आने दो उन्हें दिखा देती हूँ ।**''

दो प्रहर बीतने पर राजाजी ने मंत्रीश्वर को घर जाने की छूट दी । वे घर आये । देखा तो दरवाजा बंद था । उन्होने दरवाजा खटखटाया । मैंने पूछा-कौन है ?

वे बोले-हे प्रिये ! मैं हूँ । दरवाजा खोल ।

मैंने गुस्से से इन्कार कर दिया । उन्होंने अपनी मजबूरी बताई और बोले ''**हे प्रिये ! मैं अपनी मर्जी से नहीं रुका था । राजाजी की आज्ञा थी, इसलिए मजबूर था । अगली बार ऐसी गलती नहीं होगी ।**''

गुस्से से मैंने दरवाजा खोला **''आज से राजा के गुलाम बनकर ही रहना'** ऐसा कहकर मैं अपने पिताजी के घर की ओर निकल पडी । क्रोध में अंध बनी मैं क्या कर रही हूँ, मुझे कुछ पता नहीं था । मंत्रीश्वर ने मुझे रोकने का खूब प्रयत्न किया, परंतु मैं नहीं मानी ।

रात्रि के घोर अंधेरे में मैं नि:सहाय, अकेली चल पडी । अब रास्ते में मुझे डर लगने लगा । लेकिन अभिमान से प्रेरित मैं अपने निश्चय पर दृढ रही । घर जाने का विचार भी नहीं किया । आगे चलकर एक चोर की पल्ली ने मुझे पकडा । उन्होंने मेरे गहने और कीमती वस्त्र चुराकर मुझे पल्लीपति को सौप दिया । वह मेरे रुप पर मोहित हो गया । उसने मुझे अपनी बनाना चाहा । मैं अपने सतीत्व पर स्थिर थी । मैंने उसे साफ-साफ कह दिया–**'हे दुष्ट ! मेरे प्राण चल जाय, तो भी परवाह नहीं, परंतु अपने शील का भंग स्वप्न में भी नहीं करुंगी ।'** मेरे सतीत्व के जोर के सामने वह शांत हो गया । उसने मुझे बब्बरकुल में ले जाकर बेच दिया । वहाँ नीच जाति के एक रंगारे ने मुझे खरीद लिया । उसने भी मेरे शीलखंडन का प्रयत्न किया । परंतु मैं अटल रही । अंत में क्रोधित होकर उसने मेरे शरीर में से खून निकालकर बर्तन में भरा । उसमें पैदा हुए कीडों से उसने अपने कपडे रंगने का कार्य चालु किया । प्रतिदिन खून निकालने के कारण मुझे पिलिया हो गया, फिर भी, किसी भी हालत में मैंने अपना शीलभंग नहीं किया ।

अपने किये हुए कषाय पर मुझे खूब पश्चात्ताप हुआ । मैं आत्मनिंदा करने लगी । धीरे-धीरे मेरे पापोदय का अंत आया । किसी पुण्योदय से मेरा भाई धनपाल व्यापार के लिए बब्बरकुल में आया । वस्त्र के व्यापार हेतु वह उस रंगारे के घर आया । देखते ही उसने मुझे पहिचान लिया । रंगारे को खूब धन देकर मुझे उसकी कैद में से छुडवा दिया । भाई धनपाल मुझे घर ले आया और मंत्रीश्वर से क्षमा मांगकर मुझे अपने घर भेजा । मैंने अपने परिवार के सामने अपनी आप बीती बताई । मेरे पति ने मुझपर विश्वास कर मेरा स्वीकार किया । मैंने अपनी भूल जानकर मंत्रीश्वर के पैरों में गिरकर माफी मांगी । उन्होंने मुझे माफकर सभी गृहकार्य की स्वामिनी पद पर स्थापित किया । तब से हे महात्मन् ! मैंने निश्चय कर लिया कि किसी भी स्थिति में मैं गुस्सा नहीं करुंगी । सवा लाख की कीमत के तीन-तीन घडों के नुकसान से भी गुस्से से होने वाला नुकसान ज्यादा है, इसलिए मैंने दासी पर क्रोध नहीं किया ।

उसी समय अदृश्य रुप में रहे देवता प्रत्यक्ष हुए । उस देव ने अच्चंकारी भट्टा को प्रणाम करके कहा– **''मैं सौधर्म देवलोक का देव हूँ ।''** सुधर्म सभा में बैठकर इन्द्रमहाराजा ने प्रशंसा करते हुए कहा-**'वर्तमान में इस पृथ्वीलोक पर अच्चंकारी भट्टा के समान कोई भी क्षमावान नहीं है ।**

इन्द्रमहाराजा की इस बात को सुनकर मैंने ही परीक्षा करने के इरादे से लक्षपाक तैल के तीन घडे फोडे है । परंतु आपके शील धर्म के प्रभाव से आपके हाथों में रहा घडा नहीं फोड पाया । धन्य है आपकी क्षमा को ।'

ऐसा कहकर अपनी दैविक शक्ति से देवता ने फूटे हुए तीनों घडे ठीक कर तैल से भर दीए । अच्चंकारी भट्टा के शील और क्षमा गुण की प्रशंसा की । अंत में सुवर्णवृष्टि करके देवता देवलोक में चला गया । साधु भगवंत ने भी लक्षपाक तैल के द्वारा मुनिपति महात्मा की सेवा कर उन्हे स्वस्थ किया । सभी महात्माओं ने अच्चंकारी भट्टा के गुणों की प्रशंसा की । आजीवन श्राविका धर्म का पालन करती हुई अच्चंकारी भट्टा अंत में समाधि मरण प्राप्त कर देवलोक में गई । वहाँ से मनुष्य जन्म प्राप्त करके मोक्ष में जाएगी ।

विषय और कषाय के इन विपाकों को देखकर अपनी मुर्खता का त्याग करने का प्रयत्न करे ।

(क्रमशः)

स्वरूप-मंत्र-नवकार मंत्र

लेखक : **पंडितश्री पनालाल जगजीवनदास गांधी**

हिन्दी अनुवादक : **पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

असदाचारी जैसा मै, सदाचारी बनने के लिए अरिहंत और सिद्ध की निश्रा में रहकर पंचाचार का पालन कर रहे आचार्य भगवंत को नमन करता हूँ । वे पंचाचार की रक्षा करते है, अरिहंत और सिद्ध बनने के लिए निमित्तभूत, हो रहे ऐसे सर्वोच्च साधक सभी आचार्य भगवन्तों के दर्शन वन्दन, नमन, पूजन, सन्मान, सत्कार बहुमान इस सिद्धचक्र यंत्र द्वारा करता है । उसके फल स्वरुप असदाचार का नाश और सदाचार रूप पंचाचार की प्राप्ति के साथ सर्वोच्च पद की प्राप्ति की मैं इच्छा करता हूँ, मुझे वह प्राप्त हो ! मुझे वह प्राप्त हो । **''ॐ नमो आयरियाणं''** ।

अज्ञानी ऐसा मै ज्ञानी बनने के लिए, अविनीत ऐसा मैं विनीत होने के लिए, उपाध्याय भगवन्तो की, जो अरिहंत और सिद्ध बनने के लिए, आचार्य के मार्गदर्शन में ज्ञान प्राप्त कर रहे है और ज्ञानप्रदान कर रहे है, ऐसे विनय गुण से सुशोभित सभी उपाध्याय भगवंत के दर्शन, वंदन, नमन, सन्मान, सत्कार व बहुमान करता हुँ । उसके फलस्वरुप अज्ञान का नाश और विनय गुण पाना चाहता हूँ, मुझे वह प्राप्त हो, प्राप्त हो । **''ॐ नमो उवज्झायाणं''** ।

साधु भगवंत जैसे, अरिहंत व सिद्ध बनने के लक्ष से आचार्य और उपाध्याय के मार्गदर्शन से साधना कर रहे है । साधना करनेवाले को सहायक हो रहे है, और साधना का आदर्श प्रदान कर रहे है । ऐसे सर्व साधु भगवन्त के दर्शन, वंदन, नमन, सन्मान, सत्कार बहुमान से दुर्जनता का नाश एवं सज्जनता प्राप्ति चाहता हूँ, वह मुझे प्राप्त हो । **''ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं''** ।

केवल दर्शन जो मेरी आत्मा का सर्व श्रेष्ठ विशुद्ध आत्मगुण है, उस केवल दर्शन की प्राप्ति के लिए मैं दर्शन पद का दर्शन, वंदन, नमन, सन्मान, सत्कार, बहुमान इस सिद्धचक्र यंत्र के द्वारा करता हूँ और उसके फलस्वरुप केवल दर्शन की प्राप्ति चाहता हूँ । मुझे उसकी प्राप्ति हो । जब तक केवल दर्शन की प्राप्ति न हो तब तक केवल दर्शन को देने वाले सम्यग्दर्शन और उसे देनेवाले सुदेव-सुगुरु-सुधर्म का संयोग, भक्ति और श्रद्धा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो । **''ॐ नमो दंसणस्स''** ।

केवलज्ञान जो मेरी आत्मा का सर्वश्रेष्ठ आत्मगुण है, उस केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए मैं ज्ञानपद का दर्शन, वंदन, नमन, सन्मान, सत्कार बहुमान इस सिद्धचक्र यंत्र द्वारा करता हूँ और उसके फल स्वरुप केवलज्ञान की प्राप्ति को मैं चाहता हूँ । मुझे वह प्राप्त हो, प्राप्त हो । जब तक केवलज्ञान प्राप्त न हो तब तक केवलज्ञान को देने वाले सम्यग्ज्ञान, नमस्कार महामंत्र से लेकर द्वादशांगी तक उत्तरोत्तर प्राप्त हो । **''ॐ नमो नाणस्स''** ।

वीतराग स्वरूप यथाख्यात चारित्र जो मेरी आत्मा का सर्वश्रेष्ठ विशुद्ध गुण है, 'सहज शुद्ध गुण है, उस यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के लिए मैं चारित्रपद को दर्शन, वन्दन, नमन, सन्मान, सत्कार बहुमान करता हूँ इसके फलस्वरुप यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति हो, जब तक यथाख्यात चारित्र प्राप्त न हो तब तक सर्व विरति चारित्र, देश विरति, सदाचार की प्राप्ति हो । चारित्र को स्वरूप वेदना के अर्थ में घटाए तो निम्नानुसार भावना भीं कर सकते हैं ।

आत्मस्थितता-आत्मलीनता-स्वरूप-रमणता, सहजानंदावस्था, ये मात्र आत्मा के परम विशुद्ध आत्मगुण है, उस सहजानंदी की प्राप्ति के लिए चारित्रपद के दर्शन, वंदन, नमन, सत्कार, सन्मान, बहुमान करता हूँ । इस सिद्धचक्र यंत्र की भक्ति के फलस्वरुप आत्मस्थिरता, आत्मलीनता व सहजानन्द की प्राप्ति चाहता हूँ, मुझे वह प्राप्त हो, प्राप्त हो । जब तक स्वरुपावस्था की प्राप्ति नहीं होगी, तब तक सुख और दुःख से अलिप्त रहकर शाता और अशाता से दूर रहकर स्व में स्थिर रहकर, स्वरुप में लीन रहकर निजानन्द की मस्ती का आनंद लेते सहजानंदी बनूं । **''ॐ नमो चारित्तस्स''** ।

निरिहता, आत्म तृप्ति अनाहारिता, वीतरागता, ये मेरी आत्मा के सर्व श्रेष्ठ है, सहज शुद्ध गुण है । निरिहिता, आत्म तृप्ति, वीतरागता की प्राप्ति के लिए तप पद के दर्शन, वंदन, नमन, सन्मान व सत्कार करता हूँ । उसके फलस्वरुप अणाहारीपद, वीतरागता को मैं चाहता हूं, वह मुझे प्राप्त हो, प्राप्त हो । तब तक सभी परिस्थिति में सदा संतुष्ट रहूँ समभाव में वर्तन करुं । **''ॐ नमो तवस्स''** ।

नमस्कार महामंत्र के पांच परमेष्ठी पद उनके तथा प्रकार के गुणों के अंग में स्वरूपपद, ध्यानपद, समाधिपद, समतापद, शान्त-प्रशान्तपद, योगपद, पवित्रपद, आनन्दपद आदि है । इसलिए पंच परमेष्ठि पद को भावपूर्वक भावित करने से उस प्रकार के भाव प्राप्त कर सकते है । इसलिये हे जीव ! यदि तूं तेरे कुरुप से, विभाव से दुःखी होता है तो तुं पंच परमेष्ठि पद को स्वरुप पद से याद करेगा तो तूं अपने स्वरुप को प्राप्त करेगा । हे जीव ! तुं अशान्त है, तो तूं पंच परमेष्ठिपद को शान्त प्रशान्त पद से आराधना करेगा तो शान्त, उपशांत, प्रशांत भाव प्राप्त करेगा । हे जीव ! तू ममता से मोहित है ? तो इस पंच परमेष्ठि पद को समता से स्मरण करेगा तो समता प्राप्त होगी ।

हे जीव ! तुं उपाधिग्रस्त है ? तो समाधि पद को पंच परमेष्ठि का जाप कर तो उपाधी के बीच भी समाधि में रह सकेगा । इस प्रकार पंच परमेष्ठि पद नमस्कार महामंत्र–स्वरूप मंत्र नवकार मंत्र का दृढ इच्छा शक्ति से पूर्ण विश्वासपूर्वक स्मरण करने में आयेगा तो वह उस प्रकार के फल को देनेवाले कल्पवृक्ष जैसे चिंतामणी मंत्र है स्वरुपनाम और स्वरुपपद का जाप मंत्र को प्राप्त करने पून्यशाली ऐसे हम सभी वह स्वरुप नाम-जाप स्मरण से स्वरुपपद को प्राप्त करने हेतु भाग्यशाली बने यही शुभेच्छा । **(क्रमशः)**

प्रेरक कहानियाँ

लेखक : **पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

32. समर्पण का फल

दीपक ने बाती को कहा–**''तूं जलकर प्रकाश देती है और गौरव मुझे मिलता है ।'' बाती ने कहा, ''महान तो तूं हैं क्योंकि तैल की पूर्ति करके मुझे प्रज्ज्वलित करते हो ।'' 'वास्तव में दोनों एक दूसरें को छोड़ दे तो दीपक व बाती दोनों निस्सार बन जाते है ।'**

33. हृदय-परिवर्तन

सम्राट अशोक ने कलिंग देश पर आक्रमण कर 1 लाख सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया था । कारण मात्र इतना ही था कि वे अशोक की आज्ञा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे ।

रात को युद्ध भूमि में अशोक गया, वहां एक स्त्री अपने नन्हें पुत्र की लाश को उठाकर अशोक के सामने आकर बोली, **''तुने इसके पिता को मार डाला, उसने तेरा क्या बिगाडा ? वह तो नि:शस्त्र था । तथा इस अबोध बालक को मारकर तूने कौन सा बड़ा साम्राज्य जीत लिया ? हमारे खून से तेरे महल की छत रंगा कर तुं भले आनंदित होता होगा, परन्तु सोचा है कभी हमारे हृदय का क्या हाल है !''**

हमारे हृदय का क्या...यह वाक्य अशोक के हृदय पर चोंट कर गया ! तत्काल अपनी तलवार जमीन पर गिरा दी और भविष्य में कभी भी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर दी ।

34. जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि

एक बार कृष्ण की सभा में **'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'** विषय पर घंटों तक बहस चली । अंत में सभा समाप्त करते हुए और कभी इस विषय पर चर्चा करने का निर्णय हुआ ।

एक दिन कृष्ण ने युधिष्ठिर को बुलाकर एक कागज देते कहा, **'द्वारिका में जितने बूरे आदमी है उनका List करके लाओ ।'**

और दुर्योधन को कहा-**'द्वारिका में जितने अच्छे आदमी है, उनका List करके लाओ ।'**

15 दिन के बाद दोनों का सभा में आगमन हुआ । सभा भी अच्छे बूरे व्यक्तियों को जानने के लिए उत्सुक थी, परन्तु दोनों के कागज कोरे थे । युधिष्ठिर को कोई बूरा व्यक्ति नहीं मिला, क्योंकि उसकी दृष्टि गुण-ग्राही थी, इसके विपरीत दोष-ग्राही दृष्टि होने से दुर्योधन को कोई अच्छा व्यक्ति नहीं मिला ।

35. सज्जन व दुर्जन का स्वभाव

एक महात्मा ने तालाब में डूबते बिच्छु को देखा, महात्मा को दया आ गई ! हाथ में उठाया-तो उसने डंक मारा ! पुनः पानी में गिर पड़ा, पुनः उठाया ! बारबार इस प्रवृत्ति को देख किसी ने कहा, **'आप व्यर्थ ही क्यों कष्ट भोग रहे हैं, यह तो आपको डंक देता है और आप इसे बचाना चाहते हैं ?'**

महात्मा ने जवाब दिया, **''यह अपना स्वभाव न बदले तो मैं क्यों बदलूं ।''**

36. शुभ-अशुभ भावों की असर

एक मंत्री ने राजा को कहा, **''आप जैसा दूसरें के लिए चाहते हैं–वैसे ही भाव सामने वाले के हृदय में पैदा होतें है ।''** राजा मानने को तैयार नहीं हुआ ।

मंत्री राजा के साथ बाजार गया । मार्ग में अत्यंत दीन-दु:खी बुढ़िया को देख तत्काल राजा ने मंत्री को उसे सहायता करने की बात कही । तभी मंत्री ने जाकर बुढ़िया को कहा-**''आप नगर में भीख मांगने क्यों जा रही हो, बाजार तो बंद है-राजा मर गया है । यह सुनते ही बुढ़िया बोल उठी-'कैसा भला राजा था ।''**

मंत्री की बात पर राजा को कुछ विश्वास हुआ, आगे बढ़ें-तो देखा, 'एक हट्ठा कट्ठा मजदूर लकडी की भारी ले जा रहा था, उसे देख राजा ने अपने स्वास्थ्य के लिए मंत्री को उसका खून लेने की बात कहीं । तभी आगे जाकर मंत्री ने उस मजदूर को राजा की मृत्यु के समाचार दिये । उसने कहा-**''अच्छा हुआ । बड़ा दुष्ट राजा था ।''** इस रहस्य को जानकर राजा ने मंत्री की बात स्वीकार कर ली ।

37. ललित विस्तरा से प्रतिबोध

जैन धर्म के गहनतम अभ्यास के बाद तर्क निपूण सिद्धर्षि बौद्ध दर्शन का अभ्यास करने गए । तर्क वितर्को का अभ्यास किया । बौद्ध दर्शन की बातें उन्हें जंच गई और बौद्धाचार्य ने भी उन्हें आचार्य पद का प्रलोभन देकर आकर्षित किया ! सिद्धर्षि तैयार ही ये, परन्तु गुरु की सम्मति लेने गुरु के पास गये ! बौद्धाचार्य ने भी कहा था कि **'यदि वहीं रहना पड़े तो मुझे कहकर रहना ।'**

इस प्रकार 21 बार सिद्धर्षि जैनाचार्य से बौद्धाचार्य व बौद्धाचार्य से जैनाचार्य के पास गये, अब तो बौद्ध दीक्षा का निर्णय ही कर आयें थे । गुरु ने **'ललिता विस्तरा'** ग्रंथ आसन पर रखकर **'स्थंडिल'** से आने के बाद बात करने का कहा । बेकार बैठे सिद्धर्षि ने ग्रंथ उठाया पढ़ा । मुग्ध बन गये ! सत्य का बोध हो गया और गुरु चरणों में गिर पड़े ।

(क्रमशः)

शासन-प्रभावना के समाचार

मरुधर रत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** आदि ठाणा-5 नौ वर्षों के बाद दि. 3 अप्रेल 2024 के शुभ दिन राजस्थान राज्य में प्रवेश किया ।

दि. 4 अप्रेल को जिरावला महातीर्थ में प्रवेश किया । तीन दिनों में श्री जिरावला पार्श्वनाथ भगवान की प्रदक्षिणा, जाप, आयंबिल आदि सुंदर आराधना की ।

दि. 7 अप्रेल को शाम को 5 कि.मी. विहार कर श्री शीतलनाथ जैन संघ–दांतराई पधारे ।

दि. 8 अप्रेल को 15 कि.मी. विहारकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी संघ-मेर मांडवारा पधारे ।

दि. 9 अप्रेल को 12 कि.मी. विहार कर श्री आदिनाथ जैन संघ-तवरी पधारे ।

दि. 10 अप्रेल को 10 कि.मी. विहार कर श्री मुनिसुव्रत स्वामी ओसवाल जैन संघ-कालंद्री पधारे ।

दि. 11 अप्रेल को 9 कि.मी. विहार कर श्री पार्श्वनाथ जैन संघ-बरलूट पधारे । गाजते-बाजते श्री संघ द्वारा पूज्यश्री का सामैया किया गया ।

दि. 12 अप्रेल को 11 कि.मी. विहार कर श्री पार्श्वनाथ जैन संघ-सवरी मांडाणी पधारे ।

कैलाश नगर में प्रवेश

दि. 13 अप्रेल को 11 कि.मी. विहार कर कैलाश नगर पधारे । यहाँ समता साधक पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा. के संयम जीवन के 50 वें वर्ष में मंगल प्रवेश निमित्त चैत्र मास की शाश्वती नवपद ओली एवं भव्य महोत्सव का आयोजन था । प्रात: 7.15 बजे गाजते-बाजते श्री आदिनाथ जैन संघ-कैलाशनगर के द्वारा पूज्यश्री का भव्य सामैया किया गया । फिर जिनालय दर्शन के बाद पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । दोपहर 3.00 बजे भी पूज्यश्री का प्रवचन हुआ ।

दि. 14 अप्रेल को प्रात: 9.30 बजे एवं दोपहर 3.00 बजे पूज्यश्री के प्रेरणादायी प्रवचन हुआ ।

नवपद ओली एवं सामैया

दि. 15 अप्रेल को प्रात: 7.00 बजे श्री संघ में आयोजित चैत्र मास की शाश्वती नवपद ओली में निश्रा प्रदान करने के लिए विद्वद्वर्य श्रमणरत्न मुनि श्री धुरंधरविजयजी म.सा., कैलाश नगर के रत्न, समता मूर्ति पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा., व्यवहार कुशल, वैयावच्च प्रेमी पू.आ.श्री हेमप्रभसूरीश्वरजी म.सा. आदि 60 साधु-साध्वीजी का भव्य सामैया हुआ ।

चैन्नई आदि क्षेत्रों में बसे कैलाशनगर वासियों ने सभी गुरुभगवंतों का बडे ही हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया । फिर प्रवचनादि कार्यक्रमों के लिए बनी **विनीता नगरी** का भव्य उद्घाटन चढावे के लाभार्थी सुखलालजी बाबुलालजी परिवार के द्वारा किया गया । तत्पश्चात् मंगलाचरण एवं विद्वद्वर्य श्री मुनिराज श्री धुरंधरविजयजी म.सा. का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । प्रवचन के बाद भरत चक्रवर्ती भोजन खंड का भव्य उद्घाटन चढावे के लाभार्थी धरमचंदजी मीठालालजी परिवार के द्वारा किया गया । आज नवपद ओली के प्रथम दिन श्री संघ में लगभग 60 आयंबिल की आराधना हुई । दोपहर 3.00 बजे श्री आदिनाथ जिनालय में श्री पार्श्वनाथ पंचकल्याणक पूजा पढाई गई ।

दि. 16 अप्रेल से 23 अप्रेल तक प्रतिदिन प्रात: 6.00 बजे मंदिरजी में सामुहिक देववंदन एवं महामंगलकारी भक्तामर स्तोत्र का पाठ हुआ । फिर

गुरुवंदन एवं मंगलाचरण के बाद विद्वद्वर्य श्री धुरंधरविजयजी ने आर्हन्त्य की महिमा बताई । प्रतिदिन 9.30 बजे विनीता नगरी में पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. एवं पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमप्रभसूरीश्वरजी म.सा. के नवपद की महिमा विषय पर प्रेरणादायी प्रवचन हुए । दोपहर 12.00 बजे आराधकों के आयंबिल हुए । दोपहर 3.30 बजे विनीता नगरी में पूज्य विद्वद्वर्य मुनि श्री धुरंधरविजयजी म.सा. के श्रीपाल महाराजा के जीवन चरित्र पर आकर्षक शैली में प्रवचन हुए । शाम को 6.45 बजे संध्या भक्ति हुई ।

दि. 20 अप्रेल को जिनालय दर्शन के बाद शा. शंकरलालजी चुन्निलालजी, शां कांतिलालजी अचलचंदजी एवं शा. रमेशकुमार अचलचंदजी के गृहांगणों में श्री संघ के साथ गाजते-बाजते गुरुभगवंतों के पगले हुए ।

दि. 21 अप्रेल को चरम तीर्थंकर शासनपति श्री महावीर स्वामी के जन्मकल्याणक निमित्त प्रात: 7.00 बजे भव्य वरघोडा प्रारंभ हुआ । भगवान महावीर की तस्वीर से सुशोभित गाडी, बीजापुर बेंड, ढोल, नृत्य-मंडली, परमात्मा की पालखी एवं चतुर्विध श्री संघ के साथ वरघोडा पूरे गांव में प्रसार होकर 8.30 बजे विनीता नगरी में संपन्न हुआ । छोटे गांव में भी जैन-अजैन सभी के दिलों में हर्षोल्लास समा नहीं रहा था । गांव में रहे अजैन परिवारों ने भी वरघोडे के दर्शन किये ।

दि. 22 अप्रेल को प्रात: 7.00 बजे समाधि साधक पू.मु. श्री कनकसेनविजयजी म.सा. के सांसारिक परिवार शा. कांतिलालजी राजमलजी एवं महेन्द्रकुमार भबूतमलजी के गृहांगण में गाजते-बाजते श्री संघ के साथ गुरुभगवंतों के पगले हुए ।

दि. 23 अप्रेल को प्रात: 7.00 बजे सेसमलजी हुकमीचंदजी, संघवी कांतिलालजी मगराजजी, अशोककुमार चुन्निलालजी, इन्दरमलजी फूलचंदजी, बाबुलालजी अंबालालजी के गृहांगणों में गाजते-बाजते श्री संघ के साथ पूज्य गुरुभगवंतों के पगले हुए । प्रात: 9.00 बजे चैत्री पूनम के देववंदन हुए ।

त्रिदिवसीय महोत्सव एवं पारणा

दि. 24 अप्रेल को पूज्य पंन्यास प्रवर श्री जिनधर्मविजयजी म.सा. की वर्धमान तप की 98वीं ओली पूर्णाहूति निमित्त प्रात: 7.00 बजे विनीता नगरी में पूज्य गुरुभगवंतों का मांगलिक एवं प्रासंगिक प्रवचन हुआ । फिर तपस्विओं के पारणे हुए । 45 से अधिक साधु-साध्वीजी ने ओली की सुंदरतम आराधना की । लगभग 60 श्रावक-श्राविकाओं ने श्री संघ में ओली की । कैलाशनगर जैन संघ की ओर से 1100 रुपये, शा. शंकरलालजी चुन्निलालजी की ओर से तांबे की बोतल, विमलाबाई शांतिलालजी की ओर से Hot Box Tiffin की प्रभावना की गई । इससे अतिरिक्त भिन्न-भिन्न लाभार्थिओं की ओर से भी नकद रुपयों की प्रभावनाएँ की गई ।

तत्पश्चात् पू.आ. श्री मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा. के संयम सुवर्ण वर्ष में प्रवेश निमित्त श्री संघ की ओर से त्रिदिवसीय महोत्सव के अन्तर्गत प्रात: 10.00 बजे पू. श्रमणरत्न विद्वद्वर्य श्री धुरंधरविजयजी का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । फिर महोत्सव के लाभार्थिओं का श्रीसंघ के ओर से बहुमान किया गया । दोपहर 3.00 बजे जिनालय में भव्यतिभव्य पंचकल्याणक पूजा पढाई गई । शाम को 8.30 बजे विनीता नगरी में प्रभुजी की भक्ति हुई, जिसमे संगीतकार अंकुरभाई ने भक्ति की रमझट मचाई ।

दि. 25 अप्रेल को प्रात: 7.00 बजे श्री संघ के साथ गाजते बाजेत गुरु भगवंतों के पगले, भूरमलजी वीरचंदजी, हुकमीचंदजी ताराचंदजी, जयंतिलालजी

मूलचंदजी, जसवंतभाई ताराचंदजी, मंछालालजी ताराचंदजी, चंपालालजी वीरचंदजी, सुरेशकुमार बाबुलालजी, सुखराजजी बाबुलालजी, भूरमलजी बाबुलालजी, कमलेशकुमार अचलचंदजी, विमलचंदजी मूलचंदजी, उत्तमचंदजी खेमचंदजी, प्रकाशकुमार राजमलजी आदि के गृहांगणों में हुए । शा. सुरेशकुमार बाबुलालजी ने जीवदया हेतु 51,000/- रुपये की घोषणा की ।

फिर 9.30 बजे विनीतानगरी में विद्वद्वर्य पूज्य मुनिराज श्री धुरधंरविजयजी एवं पूज्य आ.श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । दोपहर विजय मुहूर्त में महामंगलकारी श्री सिद्धचक्र महापूजन पढाया गया । शाम को 8.30 बजे परमात्म भक्ति हुई ।

दि. 26 अप्रेल को प्रात: 8.00 बजे श्री आदिनाथ जिनालय में श्री शक्रस्तव महाभिषेक हुआ । फिर 9.30 बजे गाजते-बाजते समता मूर्ति पूज्य आचार्य श्री मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा. को पालखी में बिठाकर शोभा यात्रा हुई । फिर विनीता नगरी में उनके गुणानुमोदन सभा का आयोजन हुआ । प्रारंभ में संगीतकार अंकुरभाई ने ''**दीक्षा से सुवर्ण वर्ष है आयो...**'' मारवाडी गीत से सभा को गुरुभक्ति में जोडा । फिर बालमुनि श्री विमलपुण्यविजयजी, बालमुनि श्री हेमरसविजयजी एवं बालमुनि श्री हेमजीतविजयजी ने ''**आओ सब मिल गुरुगुण गाए**'' गीत गाकर अपनी गुरुभक्ति प्रस्तुत की । तत्पश्चात् **पू.आ. श्री हेमप्रभसूरीश्वरजी म.सा.** ने पूज्य **आ. श्री मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा.** के जीवन प्रसंग बताए । बीच बीच में पूज्य पंन्यास प्रवर श्री जिनधर्मविजयजी, पूज्य गणिवर्य श्री जिनभद्रविजयजी, पूज्य गणिवर्य श्री हेमरतिविजयजी, पूज्य मुनिराज श्री शालिभद्रविजयजी और पूज्य मुनिराज श्री स्थूलभद्रविजयजी ने तथा श्रावकों में से संदीपभाई, संजयभाई आदि ने पूज्य आचार्य भगवंत के गुणानुमोदन किये । श्री संघ की नन्हीं बालिकाओं ने भक्ति नृत्य प्रस्तुत किया ।

इस प्रसंग पर पूज्य गुरुभगवंतों का गुरु ओवारणा का चढावा 12.06 लाख एवं कामली अर्पण करने का चढावा 1 करोड 08 लाख रुपयें में ऐतिहासीक चढावा तथा जीवदया में 5.11 लाख का योगदान एस.सी. परिवार ने लेकर गुरुभगवंतों को कामली अर्पण की ।

दोपहर 3.30 बजे पुन: गुणानुमोदन सभा में प्रभावक प्रवचनकार पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. एवं विद्वद्वर्य श्री धुरंधरविजयजी म.सा. का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । प्रवचन के बाद शा. रतनचंदजी भिकमचंदजी, शा. कांतिलालजी भिकमचंदजी, शा. किशोरकुमारजी फूलचंदजी, शा. विक्रमकुमार केशरीमलजी, शा. केशरीमलजी भिकमचंदजी के गृहांगण में गुरुभगवंतों के गाजते-बाजते पगले हुए । शाम को 8.30 बजे प्रभु भक्ति हुई ।

त्रिदिवसीय जीवित महोत्सव

दि. 27 अप्रेल से पूज्य आ. श्री मल्लीसेनसूरीश्वरजी म.सा. के उपकार स्मृति में, पू.आ. श्री मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा. के 50 वें संयम वर्ष में प्रवेश एवं पू.सा.श्री ऋजुदर्शिताश्रीजी म.सा. के 30 वर्ष की संयम जीवन की अनुमोदनार्थ तथा कमलाबाई भूरमलजी, चंपालालजी तथा बंसीबेन के जीवित महोत्सव का प्रारंभ हुआ ।

प्रात: 7.00 बजे शांतिलालजी फूलचंदजी, जयंतिलालजी आयदानमलजी, नथमलजी रुकमणी, प्रदीपकुमार भूरमलजी, अशोककुमारजी फूटरमलजी, हिम्मतमलजी मियाचंदजी, देविचंदजी मीठालालजी, किरणराजजी उम्मेदमलजी, मोहनलालजी हजारीमलजी, उत्तमचंदजी हंजारीमलजी, विक्रमकुमार फूलचंदजी, रुपचंदजी पुखराजजी, पुखराजजी पुनमचंदजी आदि के गृहांगणों में गाजते-वाजते गुरुभगवंतों के पगले हुए ।

फिर 9.30 बजे विनीता नगरी में विद्वद्वर्य श्री धुरंधरविजयजी का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । दोपहर 12.30 बजे श्री आदिनाथ जिनालय में पंच कल्याणक पूजा पढाई गई । फिर दोपहर 3.30 बजे विनीता नगरी में संयम उपकरण वंदनावली का कार्यक्रम हुआ । संगीतकार वीपीनभाई पोरवाल ने भाववाही संगीत प्रस्तुत किया । फिर पूज्य आचार्य श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. ने उपकरणों की महत्ता बताई । आराधना के द्वारा नवकारवाली, आसन और कामली के चढावे हुए । अंत में पूज्य आ. श्री मनमोहनसूरीश्वरजी म.सा. के अक्षत से वधामणा किये गए ।

शाम 6.00 बजे पू.आ. श्री रत्नेसनसूरीश्वरजी म.सा. आदि ठाणा-5, 3 कि.मी. विहार कर शेउडा गांव पधारे ।

दि. 28 अप्रेल को 15 कि.मी. विहार कर जावाल पहुंचे । श्री जावाल जैन संघ मे गाजते-बाजते पूज्यश्री का सामैया किया । फिर पूज्यश्री का प्रासंगिक प्रवचन हुआ । शाम को 4 कि.मी. विहार करके उड पधारे ।

दि. 29 अप्रेल को 12 कि.मी. विहार करके सिरोही पधारे । श्री हीरविजयसूरि आराधना भवन वी.सी. में विराजित पूज्य आ. श्री तपोरत्नसूरीश्वरजी म.सा. आदि ठाणा-50 के साथ स्नेह मिलन हुआ ।

दि. 30 अप्रेल को सिरोही एक साथ रहे 14 जिनमंदिरों के दर्शन किये । फिर 9.30 बजे पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ ।

दि. 1 मई को 7 कि.मी. विहार कर श्री महावीर स्वामी जैन तीर्थ-बालदा पधारे । वहाँ विराजमान पूज्य आ. श्री अभयचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. आदि ठाणा-11 के साथ स्नेह मिलन हुआ ।

दि. 2 मई को 12 कि.मी. विहार कर बामनवाडजी तीर्थ पधारे । चरम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी भगवान के विचरण काल में इस भूमि पर उनके कानों में से कीले निकाले गए थे । नयनरम्य जिनालय, समेतशिखरजी की रचना एवं आगम मंदिर आदि जिनाल्यों के दर्शन हुए ।

पिण्डवाडा प्रवेश

दि. 3 मई को 8 कि.मी. विहार कर पिण्डवाडा पधारे । श्री संभवनाथ जिनालय से श्री पिण्डवाडा जैन संघ ने गाजते-बाजते पूज्यश्री का भव्य स्वागत किया । फिर 10.00 बजे पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । यहाँ विराजमान पू. गणिवर्य श्री विश्वरत्नविजयजी आदि ठाणा 11 से स्नेह मिलन हुआ ।

दि. 4 मई को विहार करते हुए पूज्य आ. श्री अभयचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. पधारे । श्री संघ ने गाजते-बाजते आचार्य भगवंत का स्वागत किया । फिर 10.00 बजे पू. मुनिश्री यशप्रेमविजयजी एवं दोनों आचार्य भगवंतों के प्रेरणादायी प्रवचन हुए ।

दि. 6 मई को पूज्य आ.श्री नीतिसूरिजी समुदाय के पूज्य आ. श्री ललितप्रभसूरिजी आदि पधारे । श्री संघ ने गाजते-बाजते आचार्य भगवंत का स्वागत किया ।

योगानुयोग दि. 6 मई को पू.आचार्यदेव श्री भुवनभानुसूरिजी म. की पुण्यतिथि होने से पू.आ.श्री रत्नसेनसूरिजी म., पू.आ.श्री अभयचंद्रसूरिजी म., पू.पं. श्री हेमहर्षविजयजी म. आदि ने गुणानुवाद किए ।

आगामी कार्यक्रम

दि. मई 20 से दि. 25 मई बडगांव-शिवगंज में ध्वजा महोत्सव ।

दि. 2 जून से दि. 9 जून वीरवाडा में ध्वजा महोत्सव ।

दि. 10 जून से दि. 12 जून पेसुआ में ध्वजा महोत्सव ।

प्रवचन-मोती

प्रवचनकार : पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

1817. जिन संबंधों के लिए व्यक्ति इतनी महेनत करता है, परंतु जाते समय वे संबंध साथ नहीं रहते है ।

1818. समय है तब समझ नहीं होती और समझ है तब समय नहीं होता ।

1802. रात्रि में सोते समय आत्मा को शुभ भावों से भावित करना चाहिए ।

1803. मन ही आत्मा के लिए बंधन और मुक्ति का कारण है ।

1804. सुख और दु:ख का कारण मात्र व्यक्ति और वस्तु का ममत्व है ।

1805. संयम जीवन अर्थात् मिट्टी में से सोना बनाने की कला ।

1806. परमात्मा ने जैसी साधना की है, उसका अंश मात्र भी अनुकरण हम नहीं कर सकते, चाहे हम छह महिने के उपवास ही क्यों न कर ले ।

1807. भगवान के सारे उपवास निर्जल थे । अपनी साधना काल में वे एक क्षण भी पालथी लगाकर नहीं बैठे । जंगलों में ठंडी, गर्मी, वर्षा को समभाव से सहते हुए निर्जरा की थी ।

1808. भगवान महावीर स्वामी ने लगातार दो दिन भोजन ग्रहण नहीं किया । पारणे में एकासना और तप में कम से कम छट्ठ का तप किया था ।

1809. जहाँ ध्यान है, वहाँ कायोत्सर्ग है ।

1810. अच्छे कार्य का यश हम स्वयं लेना चाहते है और अकार्य का अपयश अन्य व्यक्ति को देते है । अपनी भूल का स्वीकार करना अतिमुश्किल है ।

1811. जो मोक्ष के साथ में जोडे वह योग । ज्ञान, दर्शन और चारित्र रुप रत्नत्रयी योग के साधन है ।

1812. आत्मा के उद्धार के लिए तीर्थ और तीर्थंकर ही साधन है ।

1813. आज भले भगवान हमें नहीं मिले है, उनका शासन, उनकी वाणी तो मिली है, हम बडभागी है ।

1814. मिट्टी के घडे में पानी धारण करने की ताकत है, परंतु पकने के बाद ही ।
आम की भी कीमत पकने के बाद ही है, सोना भी शुद्ध होने के लिए आग में तपता है ।
भव स्थिति के परिपाक के बाद ही आत्मा में मोक्ष में जाने की योग्यता प्राप्त होती है ।

1817. एक लाख बार, श्री सीमंधर स्वामीजी का नाम स्मरण करने से आत्मा की भवस्थिति का परिपाक होता है । अल्प भवों में वह मोक्ष प्राप्त करती है ।

(क्रमश:)

RNI No. MAHHIN/2000/00860 • Postal Reg. No. MCS/125/2024-26 • WPP License No. MR/TECH/WPP-285/South/2024-26
Posted at Patrika Channel STG Office Mumbai-1 • Date of Pub. 12 Day of every month • Posting Date 15th of every month

आ. श्री मनमोहनसूरिजी गुणानुमोदन समारोह दि. 26-04-2024

गुरु ओवारणा एवं कामली अर्पण

गुरु भक्ति

सिद्धचक्र पूजन

संयम उपकरण वंदना दि. 27-04-2024

पिण्डवाडा प्रवेश दि. 03-05-2024

पिण्डवाडा में प्रवचन दि. 04-05-2024

If undelivered please return to : DIVYA SANDESH PRAKASHAN
Office No.304, 3rd floor, Bay Vue Building, Wing--East Bay,
Dr.M.B.Velkar Street,Kalbadevi, Mumbai-400002.

To,

From :

Published and Printed by : SURENDRA JAIN on behalf of DIVYA SANDESH PRAKASHAN
Printed at : SOMANI PRINTING PRESS, Gala No. 3-4, Amin Ind. Estate, Sonawal Cross Road No. 2, Goregaon (E), Mumbai-400 063. and Published from : Office No.304, 3rd floor, Bay Vue Building, Wing--East Bay, Dr.M.B.Velkar Street,Kalbadevi, Mumbai-400002. EDITOR:SURENDRA JAIN